काव्य-लक्षण

दिनांक
19.3.2020
20.3.2020
21.3.2020

भारतीय काव्य शास्त्र, बी.ए ऑनर्स द्वितीय वर्ष
चतुर्थ सेमेस्टर

समय: 9:30 से 10:30
कमरा नं: 5A
बृहस्पतिवार
शुक्रवार
शनिवार

काव्य लक्षण

जब कोई भी आचार्य काव्य को परिभाषित करता है या उसके स्वरूप का विवेचन करते हुए किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है तो उसके चिन्तन की परिधि में काव्य के लक्षण भी समाविष्ट रहते हैं। इसलिए सामान्यः काव्य के लक्षणों पर अलग से विचार करना आवश्यक नहीं होता। कोई भी 'वस्तु' उसमें निहित वैशिष्ट्य मूलक लक्षणों को छोड़कर न तो ठीक से परिभाषित की जा सकती है और न उसके स्वरूप को ही स्पष्ट किया जा सकता है। फिर काव्य के लक्षणों पर अलग से विचार किया जाता रहा है

संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य के स्वरूप पर पर्याप्त विचार-विमर्श हुआ, जिससे विभिन्न काव्य सम्प्रदायों का विकास हुआ और काव्य के प्रमुख तत्वों की चर्चा करते हुए काव्य लक्षण निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।

संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट काव्य लक्षण :

संस्कृत काव्यशास्त्र में सर्वप्रथम आचार्य भरत ने (दूसरी शताब्दी) ग्रन्थ "नाट्यशास्त्र" नाट्य को ही काव्य शब्द से ग्रहण करते हुए उत्तम काव्य के कतिपय गुणों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है।

" मृदु ललित पदाढ्य गूढ शब्दार्थ हीनम्,
जन पद सुख बोध्यं युक्तिमन्नृत्य योज्जम्,।
बहुकृत रसमार्गं सन्धिसन्धान युक्तम् ॥
स भवति शुभकाव्यम् नाटकप्रेक्षकाणाम् ॥ "

अर्थात्, नाटक को देखने वालों के लिए शुभ काव्य वह होता है जिसकी रचना कोमल और ललित पदों में की गई हो, जिसमें शब्द और गूढ न हों, जिसको जनसाधारण सरलता से समझ सके। जो तर्क संगत हो, जिसमें नृत्य की योजना की जा सके, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के रस स्वीकार किए गए हो और जिसमें कथानक संन्धियों का पूर्ण निर्वाह किया गया हो।

(2) आचार्य भामह (छठी शताब्दी) ग्रन्थ - काव्यालंकार

भामह ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है:

" शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् "

अर्थात् :- शब्द और अर्थ के 'साहित भाव' को काव्य कहते हैं।

" शब्दार्थौ सहितौ काव्यम गद्यं-पद्यं च तत् द्विधा "

अर्थात् :- शब्द और अर्थ दोनो का 'सहभाव' ही काव्य है। अर्थात् जहाँ रचना में वर्णित अर्थ के अनुरूप शब्दों का प्रयोग हो या शब्दों के अनुरूप अर्थ का वर्णन हो वहाँ शब्द और अर्थ के 'सहभाव' [illegible] के कारण काव्य की स्थिति मान्य है यह काव्य गद्य और पद्य दो प्रकार का होता है। आचार्य 'भामह' की यह परिभाषा अत्यन्त संक्षिप्त है

इस काव्य लक्षण पर टिप्पणी करते हुए आचार्य बलदेव उपाध्याय कहते हैं " भामह का काव्य लक्षण सामान्य है — " शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् "। अर्थात् शब्द और अर्थ मिलकर काव्य बनाते हैं परन्तु उनके ग्रन्थ से यह पता नहीं चलता कि शब्द और अर्थ का यह साहित्य - 'सहित-भाव' किस ~~प्रकार~~ आधार पर आश्रित रहता है। यह आधार केवल (वैयाकरण) योजना है अथवा साहित्यिक सामंजस्य ?"

3) आचार्य दण्डी (7 वी शताब्दी ग्रन्थ काव्यादर्श)

आचार्य दण्डी ने अपने ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में काव्य के लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा है,

" शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली "

अर्थात् :- इष्ट अर्थसंयुक्त पदावली ही काव्य का शरीर है। दण्डी पदावली को महत्व देते हैं। यद्यपि अर्थ को नकारते नहीं हैं। इनके अनुसार अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया में शब्द पहले है। अर्थ बाद में। दण्डी शब्दों को इष्ट अर्थ से पूर्ण मानते हैं। दण्डी अलंकारवादी आचार्य थे दण्डी केवल शब्दार्थ को काव्य नहीं मानते उनके अनुसार शब्दार्थ तो काव्य का शरीर मात्र है.

इसकी आत्मा नहीं। दण्डी अलंकार को काव्य की आत्मा मानते थे।

4) आचार्य वामन (8वी शताब्दी ग्रन्थ 'काव्यालंकार')

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' में काव्य लक्षण की परिभाषा इस प्रकार दी है।

" गुणालंकृतयो शब्दार्थयो काव्य शब्दो विद्यते "

अर्थात् गुण और अलंकार से युक्त शब्दार्थ ही काव्य के नाम से जाना जाता है।

5) आचार्य मम्मट (12वी शताब्दी ग्रन्थ - काव्य प्रकाश)

संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रमुख विद्वान 'आचार्य मम्मट' ने अपने ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' में काव्य-लक्षण की परिभाषा इस प्रकार दी है।

" तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि "

अर्थात् उनके अनुसार शब्द और अर्थ का सहभाव काव्य है, किन्तु यह सहभाव दोष-रहित, गुण-युक्त और अलंकृत होना चाहिए। कहीं कहीं अलंकार न होने पर भी काव्य हो सकता है।

6) आचार्य विश्वनाथ (14वी शताब्दी ग्रन्थ - साहित्य दर्पण)

साहित्यदर्पण कार आ० विश्वनाथ ने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रस्तुत काव्य की परिभाषाओं का खण्डन करते हुए काव्य-लक्षण की संक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार दी।

" वाक्यं रसात्मकं काव्यम् "

अर्थात् "रस से पूर्ण वाक्य ही काव्य है" विश्वनाथ ने शब्द और अर्थ के सहभाव के स्थान पर 'वाक्य' पद का प्रयोग किया है और सगुणों के स्थान पर 'रसात्मक' विशेषण का। उनके अनुसार शब्द और अर्थ के सहभाव की आवश्यकता तो सभी प्रकार की अभिव्यक्ति में होती है। कवि जो कुछ लिख दे वह काव्य नहीं

हो सकता। काव्य तो तभी होगा जब 'वाक्य रसात्मक' होगा। 'रस' ही काव्य की आत्मा है।

7) पंडितराज जगन्नाथ (17वी शताब्दी ग्रन्थ - रसगंगाधर)
पंडितराज जगन्नाथ ने अपने ग्रन्थ 'रसगंगाधर' में काव्य लक्षण को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है।

" रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् "

अर्थात - पंडितराज ने 'रस' के स्थान पर 'अर्थ की रमणीयता' पर विशेष बल दिया है। उनके अनुसार ऐसा शब्द-विधान, जिससे रमणीय या चमत्कारी अर्थ का प्रतिपादन होता है, काव्य है। 'रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य है'

पाश्चात्य विचारकों द्वारा निर्दिष्ट काव्य-लक्षण

पाश्चात्य विचारकों ने काव्य के जो लक्षण बताए हैं उनमें से कुछ भावपक्ष को प्रधानता देते हैं तो कुछ कलापक्ष को प्रधानता देते हैं।

(1) मैथ्यू आर्नल्ड के अनुसार " Poetry at bottom is the criticism of life"

अर्थात् कविता मूल रूप में जीवन की आलोचना है।

(2) कॉलरिज के अनुसार " Poetry is the best word in the best order"

अर्थात् सर्वोत्तम व्यवस्था में सर्वोत्तम शब्द ही कविता है।

(3) हडसन के अनुसार, "Poetry is the interpretation of life through imagination and emotion"

अर्थात् - कविता कल्पना और संवेग के द्वारा जीवन की व्याख्या है।"

हिन्दी आचार्यों और लेखकों द्वारा निर्दिष्ट काव्य लक्षण :-

हिन्दी साहित्य में काव्य के लक्षण को लेकर मध्यकाल (भक्तिकाल) में कोई मौलिक विवेचन नहीं हो सका। चैतन्य महाप्रभु के शिष्य रूपगोस्वामी ने 'भक्तिरसामृत सिंधु (15 भाग)' में 'भक्ति' को ही प्रकृत रस सिद्ध किया और अन्य रसों का विवेचन उसकी विकृतियों या भेदों के रूप में किया। इससे काव्य का भक्ति में अन्तर्भाव अवश्य हो गया, किन्तु काव्य के स्वरूप की कोई नई अवधारणा सामने नहीं आई। रीतिकाल के आचार्यों - केशव, चिन्तामणि, कुलपति, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारीदास, आदि ने कोई नवीन या मौलिक उद्भावना नहीं की। ये आचार्य संस्कृत के आचार्यों के मत में ही थोड़ा फेर-बदल करके उसे प्रस्तुत करते रहे।

(1) रीतिकालीन कवि 'केशवदास' ने

" जदपि सजाति सुलक्षणी, सुबरन, सरस, सुवृत्त।
भूषण बिन न बिराजई, कविता बनिता मित्त॥" कहकर 'अलंकार' की और अपना झुकाव प्रकट कर दिया।

(2) 'चिन्तामणि' ने

" सगुनालंकार सहित दोष-रहित जो होई।
शब्द अर्थ ताको कवित्त कहत बिबुध सब कोई॥"

कहकर आचार्य मम्मट के काव्य-लक्षण की ही आवृत्ति की है। मम्मट ने कभी-कभी अलंकार-रहित काव्य की स्थिति भी स्वीकार की थी। 'चिन्तामणि' ने गुण के साथ अलंकारों के सहभाव को मान्यता दी है।

(3) भिखारी दास के अनुसार -

" रस कविता को अंग, भूषण हैं भूषण सकल।
गुन स्वरूप और रंग, दूषन करैं कुरूपता॥"

अर्थात् - रस कविता का अंग (शरीर) है सभी अलंकार उसके आभूषण हैं।
गुण उसके रूप-रंग है और दोष अंग विकार है जो उसे कुरूप बनाते हैं।

आधुनिक काल में हिन्दी के आचार्यों ने परम्परा से हटकर काव्य लक्षण की नवीन अवधारणा प्रस्तुत की। आधुनिक काल आते-आते देश बहुत बड़े परिवर्तन से गुजर चुका था। अब हिन्दी के रचनाकारों और लेखकों के सामने केवल संस्कृत साहित्य ही नहीं था। वे अंग्रेजी, अरबी, फारसी, तथा बँगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं के साहित्य से भी परिचित होने लगे थे।

काव्य-लक्षण का टॉपिक (विषय) अभी पूरा नहीं है।

बी.ए. ऑनर्स द्वितीय वर्ष चतुर्थ सेमेस्टर के सभी विद्यार्थियों से आग्रह है। कि पाठ्य-सामग्री को पढ़े। अगर कहीं भी कुछ समझ में न आए तो कॉलेज खुलने, या मुझ से फोन पर बात करें।

नाम - डॉ. रूबी देवी
हिन्दी - विभाग
मो.न. 9718267579

काव्य-लक्षण

1. शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं-पद्यं च तत् द्विधा।

—भामह, छठी शती का मध्यकाल

2. काव्य शब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते।

—वामन, लगभग 800 ई०

3. तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती: पुनः क्वापि।

—मम्मट, ग्यारहवीं शती का उत्तरार्ध

4. वाक्यं रसात्मकं काव्यं। —विश्वनाथ, 1300 ई० से 1350 ई० के बीच

5. रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

—पंडितराज जगन्नाथ, सत्रहवीं शती का मध्यभाग

पहला लक्षण भामह का है। उनके अनुसार शब्द और अर्थ दोनों का सहभाव ही काव्य है। अर्थात् जहाँ रचना में वर्णित अर्थ के अनुरूप शब्दों का प्रयोग हो या शब्दों के अनुरूप अर्थ का वर्णन हो वहाँ शब्द और अर्थ के सहभाव के कारण काव्य की स्थिति मान्य है। यह काव्य गद्य और पद्य दो प्रकार का होता है। आचार्य 'भामह' की यह परिभाषा अत्यन्त संक्षिप्त है। इससे काव्य के स्वरूप का पूरा बोध नहीं होता। शब्द और अर्थ का सहभाव तो इतिहास, पुराण और शास्त्र सभी में अपेक्षित है। अर्थ के अनुरूप शब्द और शब्द के अनुरूप अर्थ तो प्रत्येक सार्थक एवं प्रभावी अभिव्यक्ति में होता है। इससे काव्य के व्यावर्तक धर्म का बोध नहीं होता। इसलिए आचार्य कुन्तक ने आगे चलकर शब्द और अर्थ के सहभाव (सहितौ) का अर्थ 'काव्य-सौन्दर्य के लिए उनकी न्यूनता या अधिकता से रहित मनोहर स्थिति' बताया है।[1] वामन ने अपने लक्षण में शब्द और अर्थ के 'सहभाव' के साथ गुण और अलंकार और जोड़ दिया है। वस्तुतः वामन द्वारा निरूपित काव्य-लक्षण को समझने के लिए उनके द्वारा कथित कुछ अन्य सूत्रों पर भी ध्यान देना होगा। वे कहते हैं—'काव्यं ग्राह्यम् अलंकारात्'। अलंकार के योग से काव्य ग्राह्य होता है और अलंकार सौन्दर्य के आधायक तत्त्व को कहते हैं, 'सौन्दर्यमलंकारः'। सौन्दर्य का विधान दोषों के परित्याग और गुण तथा अलंकारों के उपादान से होता है। गुण और अलंकार दोनों को सौन्दर्य का आधायक मानते हुए भी वामन ने गुणों को विशेष महत्त्व दिया है। उनके अनुसार काव्य की शोभा करने वाले धर्म गुण हैं तथा उसका (गुण द्वारा उत्पन्न शोभा का) अतिशय करने वाले धर्म अलंकार। 'काव्य शोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः'। काव्य-सौन्दर्य-वृद्धि में गुणों और अलंकारों की भूमिका ठीक वैसी ही है, जैसी रमणी की सौन्दर्य-वृद्धि में उसके यौवन और उसके द्वारा धारण किए गए हार, कंकण, नूपुर आदि आभूषणों की। वामन की एक विशेषता और

1. **साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रतिकाप्यसौ।**
अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थितिः॥

है—उन्होंने सबसे पहले काव्य की आत्मा का प्रश्न उठाया है। उनके अनुसार काव्य की आत्मा 'रीति' है—'रीतिरात्मा काव्यस्य'। 'रीति' कहते हैं विशेष प्रकार की पदरचना-शैली को—विशिष्टापदरचना रीतिः'। विशेष से तात्पर्य 'गुण-युक्त' से है—'विशेषो गुणात्मा'। गुण, शब्द और अर्थ दोनों के धर्म हैं। इसलिए गुणों का विशेष महत्त्व है। 'श्लेष', 'प्रसाद', 'समता', 'समाधि', 'माधुर्य', 'ओज', 'पद सौकुमार्य', 'अर्थव्यक्ति', 'उदारता' और 'कांति' इन्हीं गुणों के समावेश से पद-रचना विशिष्ट होती है। इस प्रकार अन्ततः ये गुण ही काव्य की आत्मा के आधार-तत्त्व हैं। इसी निष्कर्ष पर पहुँचकर वामन ने अपने काव्य-लक्षण में 'गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोः' पद का प्रयोग किया है।

आचार्य **मम्मट** के काव्य-लक्षण को इसी क्रम में देखना चाहिए। उनके अनुसार शब्द और अर्थ का सहभाव काव्य है, किन्तु यह सहभाव दोष-रहित, गुण-युक्त और अलंकृत होना चाहिए। कहीं-कहीं अलंकार न होने पर भी काव्य हो सकता है। दोष का परिहार पहली शर्त है। जैसे अंधा, लँगड़ा, काना (दोष-युक्त) मनुष्य सुन्दर नहीं माना जाता वैसे ही श्रुतिकटुत्व, क्लिष्टत्व, अश्लीलत्व, ग्राम्यत्व आदि दोषों से युक्त काव्य सुन्दर नहीं कहा जा सकता। गुणों का सद्भाव (होना) दूसरी शर्त है। जिस प्रकार आकार-प्रकार से निर्दोष होने के साथ ही यदि मनुष्य वीरत्व, औदार्य, शील, विनय आदि गुणों से युक्त भी हो तो उसके व्यक्तित्व का आकर्षण बढ़ जाता है उसी प्रकार निर्दोष होने के साथ ही यदि काव्य में 'ओज', 'माधुर्य', 'प्रसाद' आदि गुणों का भी समावेश हो तो काव्य-सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है। जहाँ तक अलंकारों का प्रश्न है, वे हों तो ठीक; न हों तो भी विशेष हानि नहीं। जिस प्रकार रूप-लावण्य युक्त युवती अलंकृत भी हो तो क्या कहना? उसका सौन्दर्य तो सभी प्रकार से श्लाघ्य है, किन्तु यदि वह हार आदि आभूषणों से सज्जित न हो तो भी, उसके सहज सौन्दर्य का आकर्षण कम नहीं होता। यही स्थिति काव्य की है। यदि वह निर्दोष तथा गुण-अलंकार-युक्त हो तो क्या कहना? किन्तु यदि उसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का विधान न हो तो भी उसका सहज सौन्दर्य उसकी रमणीयता में कमी नहीं आने देता। परवर्ती आचार्यों ने मम्मट के काव्य-लक्षण की आलोचना की है। किन्तु उनकी आलोचना में तत्त्व की बात कम, स्पर्धाजन्य-पाण्डित्य-प्रदर्शन अधिक है।

साहित्यदर्पणकार **कविराज विश्वनाथ** ने शब्द और अर्थ के सहभाव के स्थान पर 'वाक्य' पद का प्रयोग किया है और सगुणौ के स्थान पर 'रसात्मक' विशेषण का। उनके अनुसार शब्द और अर्थ के सहभाव की आवश्यकता तो सभी प्रकार की अभिव्यक्ति में होती है। कवि जो कुछ लिख दे वह काव्य नहीं हो सकता। काव्य तो तभी होगा जब वाक्य रसात्मक होगा। 'रस' ही काव्य की आत्मा है। 'रस' के अन्तर्गत भाव, भावाभास, रसाभास आदि सभी का समावेश मान्य है। यदि कहा जाय कि 'सगुण' कहने से 'सरस' की सिद्धि स्वतः हो जाती है, क्योंकि गुण

बिना रस के रह ही नहीं सकते तो इस दशा में भी 'सरसौ' विशेषण उपयुक्त होगा। सबसे बड़ी बात यह है कि शब्द और अर्थ काव्य के शरीर मात्र हैं। गुणों के अभिव्यंजक शब्द और अर्थ भी काव्य-स्वरूप के आधायक नहीं हो सकते। वे केवल काव्य में उत्कर्ष पैदा कर सकते हैं। काव्य का लक्षण ऐसा होना चाहिए जो उसके स्वरूप को पूर्णतः स्पष्ट कर सके। जब 'रस' काव्य की आत्मा है तो उसके लक्षण में 'रस' का उल्लेख होना ही चाहिए। इसलिए 'रसात्मक वाक्य ही काव्य' हो सकता है। कविराज विश्वनाथ ने आचार्य मम्मट के काव्य-लक्षण की आलोचना अवश्य की है, किन्तु विद्वानों की दृष्टि में उनके लक्षण में आचार्य मम्मट का लक्षण समाहित है। इस सम्बन्ध में 'साहित्यदर्पण' के टीकाकार डॉ० सत्यव्रत सिंह का कथन ध्यान देने योग्य है—''रसात्मक होने के लिए, रस रूप आन्तर तत्त्व का आधार होने के लिए, वाक्य को केवल साकांक्ष, योग्य और संसृष्ट पदों का 'कदम्ब' होना अपेक्षित नहीं अपितु अदोष, सगुण और सुरुचिपूर्ण ढंग से अलंकृत होना अपेक्षित है। निष्कर्ष यही निकलता है कि 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' की काव्य-परिभाषा से ''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि' का काव्य-लक्षण ध्वनित होता है, जिसमें कवि की कृति के रूप में 'काव्य' का रहस्य निर्दिष्ट है।'' (साहित्यदर्पण, भू० पृ० 2)

पंडितराज जगन्नाथ को विश्वनाथ कविराज का काव्य-लक्षण संकुचित प्रतीत हुआ। उन्होंने इस पर आपत्ति करते हुए कहा कि मात्र 'रसात्मक वाक्य' को काव्य मान लेने पर 'वस्तु-अलंकार-प्रधान काव्य' को काव्य की सीमा से अलग कर देना होगा। महाकवियों ने स्थान-स्थान पर जल के प्रवाह, वेग तथा गिरने और उछलने का वर्णन किया है। बन्दरों और बालकों की क्रीड़ाओं का वर्णन किया है। इन वर्णनों में रस की प्रत्यक्ष योजना नहीं होती। फिर भी ये वर्णन प्राचीन महाकवियों की व्यवस्था के अनुसार काव्य ही माने जाते हैं। इसलिए 'रसात्मक वाक्य' में ही काव्यत्व मानना न्यायसंगत नहीं। पंडितराज ने 'रस' के स्थान पर 'अर्थ की रमणीयता' पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार ऐसा शब्द-विधान, जिससे रमणीय या चमत्कारी अर्थ का प्रतिपादन होता है, काव्य है। आगे चलकर पंडितराज की भी आलोचना हुई। उनकी आलोचना इस बात को लेकर की गई कि 'अर्थ की रमणीयता' को काव्य मानते हुए भी उन्होंने 'अर्थ' को 'शब्द' का अनुयायी मानकर अपने लक्षण में 'शब्दः काव्यम्' पर विशेष बल दिया। वस्तुतः 'शब्द' और 'अर्थ' का सम्बन्ध शक्ति और शक्तिमान् के समान नित्य है। अलौकिक चमत्कार के उत्पादन में दोनों की समान भूमिका है। इसलिए काव्य में दोनों का समान महत्त्व मान्य है। इसलिए पंडितराज का शब्द पर बल देना उचित नहीं है। वस्तुतः पंडितराज अद्वैतवादी थे। इसलिए शब्द-ब्रह्म पर अधिक बल देना उनके लिए उचित ही था। 'अर्थ' के महत्त्व का निषेध उनका लक्ष्य कदापि नहीं था। उन्होंने 'अर्थ' की रमणीयता पर बल देकर वस्तु-वर्णन एवं अलंकार-प्रधान

हिन्दी आ०, काव्य-लक्षण

भिखारीदास के अनुसार–"अलंकार, रस, ध्वनि तथा गुणों से युक्त शब्दार्थ ही काव्य है–

"सो धुनि अर्थन्ह वाक्यन्ह लै गुन शब्द अलंकृत सों रति पाली।"

यह परिभाषा सर्वथा भ्रान्त है। ध्वनि और रस की पृथक गणना निरर्थक है। वस्तुतः रीति कवियों ने संस्कृत आचार्यों का अनुकरण भी किया है और जहां कहीं नवीनता के नाम पर मौलिकता दिखाने का यत्न किया है, वहां खिलवाड़ भी बन गया है।

आधुनिककालीन हिन्दी विद्वानों ने काव्य की परिभाषा प्रस्तुत करने का यत्न किया है। इसमें प्रसिद्ध विद्वानों की कतिपय परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में –"कविता प्रभावशाली रचना है जो पाठक या श्रोता के मन पर आनन्ददायी प्रभाव डालती है।" इसमें कविता के आनन्द तत्त्व और प्रभावशक्ति का ही वर्णन है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य की दो परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं–

(क) "कविता जीवन और जगत की अभिव्यक्ति है।"

(ख) "हृदय की मुक्तावस्था के लिए किया गया शब्द विधान कविता है।" प्रथम परिभाषा में यह दोष है कि जगत और जीवन की अभिव्यक्ति केवल कविता में नहीं होती और अभिव्यक्ति के सारे माध्यम कविता नहीं कहलाते। दूसरी परिभाषा के अनुसार गुणी भूतव्यंग्य तथा चित्रकाव्य की सीमा से बाहर जा पड़ता है।

डॉ. श्यामसुन्दरदास के अनुसार–"कला के उद्देश्यों को पूरक पुस्तक काव्य है।" कला के उद्देश्य विवादास्पद होने से यह परिभाषा अपूर्ण ही है।

जयशंकर प्रसाद के शब्दों में–"काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है जिसका सम्बन्ध विश्लेषण विकल्प या विज्ञान से नहीं है। यह एक श्रेयमयी प्रेम-रचनात्मक ज्ञानधारा है।" प्रसाद की यह दार्शनिक शब्दावली अनुभूति पक्ष को ही महत्त्व देती है और इसमें अभिव्यक्ति पक्ष उपेक्षित है।

सुमित्रानंदन पंत के अनुसार–"कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन छन्द ही में बहने लगता है।" इस 'परिपूर्ण क्षण' और 'हमारे' व्याख्या सापेक्ष हैं। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में परिपूर्ण अथवा उत्कृष्ट क्षण भिन्न होते हैं और प्रत्येक व्यक्ति कलाकार नहीं होता। इसके अतिरिक्त छन्दोविहीन रचना भी तो काव्य है।

महादेवी वर्मा के शब्दों में–"कविता कवि विशेष भावनाओं का चित्रण है और यह चित्रण इतना ठीक है कि उसमें वैसी ही भावनाएं किसी दूसरे के हृदय में आविर्भूत होती हैं।" इस परिभाषा में प्रयुक्त 'किसी दूसरे' शब्द चिन्त्य है। इसके स्थान पर सहृदय ही उपयुक्त शब्द है।

बाबू गुलाबराय के शब्दों में–"काव्य संसार के प्रति कवि की भाव प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं की कल्पना के ढांचे में ढली हुई श्रेय को प्रेयरूप देने वाली अभिव्यक्ति है।" इस परिभाषा में भावों की उदात्तता का उल्लेख नहीं है।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार–"उदात्त भावों की निश्छल अभिव्यक्ति का नाम कविता है।"

हमारे विचार में आधुनिक काल के विद्वानों की परिभाषाओं में डॉ. नगेन्द्र द्वारा